शरणदाता

–अज्ञेय

लेखक–परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय है। अज्ञेय का जन्म 1911 में कसिंया (देवरिया) में हुआ।

अज्ञेय विशाल भारत, सैनिक और प्रतीक के सम्पादक रहे। दिनमान (समाचार साप्ताहिक) का संपादन भी किया। आकाशवाणी और सेना में भी नौकरी की। देश–विदेश की अनेक बार यात्राएं कीं। अज्ञेय हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और नए प्रयोग के प्रणेता रहे है। विचारों के साथ–साथ उनकी शैली में भी नवीनता थी।

अज्ञेय ने उपन्यास, कहानी, यात्रा वर्णन, कविता, निबन्ध सभी विधाओं में रचना की। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग) 'नदी के द्वीप', 'अपने–अपने अजनबी' (उपन्यास) 'अरे, यायावर रहेगा याद', 'एक बूंद सहसा उछली' व 'आत्मनेपद' (निबंध संग्रह)। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'आँगन के पार द्वार' (कविता संग्रह) 'विपथगा', 'कोठरी की बात', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप', 'शरणार्थी', 'परम्परा' (कहानी संग्रह) दो भागों में कहानियाँ संकलित हैं।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत कहानी देश के बँटवारे के समय की कहानी है। हिन्दू–मुसलमान आपस में प्रेम और भाईचारे से रहते थे। एक मुसलमान ने अपने हिन्दू मित्र को भारत जाने से रोका। उत्पातियों–दंगाइयों से उसकी रक्षा करने हेतु हिन्दू मित्र को अपने घर में शरण दी। वह भी ऐसे समय में जब कि सब तरफ आग थी, सांप्रदायिकता का तूफान था। सब कुछ जल रहा था। अपने घर में खतरे की आशंका से अपने हिन्दू मित्र को अन्यत्र अपने दूसरे मित्र के यहाँ पहुँचा दिया। सब जन एक से नहीं होते। शरणागत की प्राण गंवा कर भी रक्षा की जाती है। शरणदाता शरणागत की जान लेने का प्रयास नहीं करता।

**** ****

''यह कभी हो ही नहीं सकता, देविन्दरलाल जी!''

रफीकुद्दीन वकील की वाणी का आग्रह था। चेहरे पर आग्रह के साथ चिन्ता और कुछ व्यथा का भाव। उन्होंने फिर दुहराया, ''यह कभी नहीं हो सकता, देविन्दरलाल जी!''

देविन्दरलाल ने उसके इस आग्रह को जैसे कबूलते हुए, पर अपनी लाचारी बताते हुए कहा, ''सब तो चले गए। आपसे मुझे कोई डर नहीं बल्कि आपका तो सहारा है, लेकिन आप जानते हैं, जब एक बार लोगों को डर जकड़ लेता है, और भगदड़ पड़ जाती है तब फिजा ही कुछ और हो जाती है। हर कोई हर किसी को शुबहे की नजर से देखता है, और ख़ाहमख़ाह दुश्मन हो जाता है। आप तो मोहल्ले के सरवर हैं, पर बाहर से आने–जाने वालों का क्या ठिकाणा! आप तो देख ही रहे हैं, कैसी–कैसी वारदातें हो रही हैं.....''

रफीकुद्दीन ने बात काटते हुए कहा, ''नहीं साहब, हमारी नाक कट जाएगी। कोई बात है भला कि आप घरबार छोड़कर अपने ही शहर में पनाहगर्जी हो जाएं! हम तो आपको जाने न देंगे, बल्कि जबरदस्ती रोक लेंगे। मैं तो इसे मेजारिटी का फर्ज मानता हूँ कि वह माइनारिटी की हिफाजत करे तो उन्हें घर छोड़–छोड़कर भागने न दे। हम पड़ौसी की हिफाजत न कर सके तो मुल्क की हिफाजत क्या ख़ाक करेंगे। और मुझे पूरा यकीन है कि बाहर की तो खैर बात ही क्या, पंजाब में ही कई हिन्दू भी, जहाँ उनकी बहुतायत है, ऐसा ही सोच और कर रहे होंगे। आप न जाइए, न जाइए। आपकी हिफाजत की जिम्मेदारी मेरे सिर, बस!''

देविन्दरलाल के पड़ौस के हिन्दू परिवार धीरे–धीरे एक–एक करके खिसक गए थे। होता यह कि दोपहर–शाम जब कभी साक्षात् होता, देविन्दरलाल पूछते, ''कहो लालाजी (या बाऊजी या पंडज्जी), क्या सलाह बणायी है आपने?'' और वह उत्तर देते, ''जी सलाह क्या बणाणी है, यहीं रह रहे हैं, देखी जाएगी...'' पर शाम को या अगले दिन सवेरे देविन्दरलाल देखते हैं कि वह चुपचाप जरूरी सामान लेकर कहीं खिसक गए हैं, कोई लाहौर से बाहर, कोई लाहौर में ही हिन्दुओं के मोहल्ले में। और अन्त में यह परिस्थिति आ गई थी कि अब उसके दाहिनी ओर चार मकान खाली छोड़कर एक मुसलमान गूजर का अहाता पड़ता था जिसमें एक ओर गूजर की भैंस और दूसरी ओर कई छोटे–मोटे मुसलमान कारीगर रहते थे, बाईं और भी देविन्दर और रफीकुद्दीन के मकानों के बीच मे मकान खाली थे और रफीकुद्दीन के मकान के बाद मौजंग का अड्डा पड़ता था, जिसके बाद तो विशुद्ध मुसलमान बस्ती थी। देविन्दरलाल और रफीकुद्दीन में पुरानी दोस्ती थी, और एक–एक आदमी के जाने पर उनसे चर्चा होती थी। अन्त में जब एक दिन देविन्दरलाल ने बताया कि वह भी चले जाने की बात पर विचार कर रहे हैं, तब रफीकुद्दीन को धक्का लगा और उन्होंने व्यथित स्वर में कहा, ''देविन्दरलाल जी, आप भी!''

रफीकुद्दीन का आश्वासन पाकर देविन्दरलाल रह गए। तब यह तय हुआ कि अगर खुदा न करे कोई खतरे की बात हुई ही, तो रफीकुद्दीन उन्हें पहले खबर कर देंगे और हिफाजत का इन्तजाम कर देंगे–चाहे जैसे हो। देविन्दरलाल की स्त्री तो कुछ दिन पहले ही जालंधर मायके चली गई थी, उसे लिख दिया गया कि अभी न आये, वहीं रहे। रह गए देविन्दर और उनका पहाड़िया नौकर सन्तू।

किन्तु व्यवस्था बहुत दिन नहीं चली। चौथे ही दिन सवेरे उठकर उन्होंने देखा कि सन्तू भाग गया है। अपने हाथों चाय बनाकर उन्होंने पी, धोने को बर्तन उठा रहे थे कि रफीकुद्दीन ने आकर खबर दी, सारे शहर में मार–काट हो रही है और थोड़े में मौजंग में भी हत्यारों के गिरोह बंध–बंधकर निकलेंगे कहीं जाने का समय नहीं है, देविन्दरलाल अपना जरूरी और कीमती सामान ले लें और उनके साथ उनके घर चलें। यह बला टल जाए, तो फिर लौट आएंगे.....

'कीमती' सामान कुछ था नहीं। गहना–छल्ला सब स्त्री के साथ जालन्धर चला गया था, रुपया थोड़ा बहुत बैंक में था, और ज्यादा फैलाव कुछ उन्होंने किया नहीं था। यों गृहस्थ को अपनी गिरस्ती की हर चीज कीमती मालूम होती है..... देविन्दरलाल घण्टे भर बाद अपने ट्रंक–बिस्तर के साथ रफीकुद्दीन

के यहाँ जा पहुँचे।

तीसरे पहर उन्होंने देखा, हुल्लड़ मौजंग में आ पहुँचा है। शाम होते–होते उनकी निर्निमेष आँखों के सामने उनके घर का ताला तोड़ा गया और जो कुछ था लुट गया। रात को जहाँ–तहाँ लपटें उठने लगी और भादों की उमस धुआँ खाकर और भी गलघोंटू हो गई.....

रफीकुद्दीन भी आँखों में पराजय लिये चुपचाप देखते रहे। केवल एक बार उन्होंने कहा, 'यह दिन भी देखने को–और आजादी के नाम पर! या अल्लाह!'

लेकिन खुदा जिसे घर से निकालता है। उसे फिर गली में भी पनाह नहीं देता।

देविन्दरलाल घर के बाहर निकल ही न सकते रफीकुद्दीन ही आते–जाते। काम करने का तो वातावरण ही नहीं था, वे घूमघाम आते, बाजार कर आते और शहर की खबर ले आते, देविन्दरलाल को सुनाते और फिर दोनों बहुत देर तक देश के भविष्य की आलोचना किया करते। देविन्दर ने पहले तो लक्ष्य नहीं किया, लेकिन बाद में पहचानने लगा कि रफीकुद्दीन की बातों में कुछ चिन्ता का, और कुछ एक और पीड़ा का भी स्वर, जिसे वह नाम नहीं दे सकता–थकान ? उदासी ? विरक्ति ? पराजय? न जाने.....

शहर तो वीरान हो गया था। जहाँ–तहाँ लाशें सड़ने लगी थीं, घर लुट चुके थे और अब जल रहे थे। शहर के नामी डॉक्टर के पास कुछ प्रतिष्ठित लोग गये थे यह प्रार्थना लेकर कि वह मोहल्ले में जाएं। उनकी सब लोग इज्जत करते हैं, इसलिए उनके समझाने का असर होगा, और मरीज भी वह देख सकेंगे। वह दो मुसलमान नेताओं के साथ निकले। दो–तीन मोहल्ले घूमकर मुसलमानों की बस्ती में एक मरीज को देखने के लिए स्टैथस्कोप निकालकर मरीज पर झुके थे कि मरीज के ही एक रिश्तेदार ने पीठ में छुरा भोंक दिया.....

हिन्दू मोहल्ले में रेलवे के एक कर्मचारी ने बहुत से निराश्रितों को अपने घर जगह दी थी, कि वे निराश्रित उसके घर टिके हैं, हो सके तो उनके घरों और माल की हिफाजत की जाए। पुलिस ने आकर शरणागतों के साथ उसे और उसके घर की स्त्रियों को गिरफ्तार कर लिया और ले गई। पीछे घर पर हमला हुआ, लूट हुई और आग लगा दी गई। तीन दिन बाद उसे और उसके परिवार को थाने से छोड़ा गया और हिफाजत के लिए हथियारबंद पुलिस के दो सिपाही साथ किए गए। थाने से पचास कदम के फासले पर पुलिस वालों ने अचानक बन्दूक उठाकर उस पर और उसके परिवार पर गोली चलाई। वह और तीन स्त्रियाँ मारी गईं। उसकी माँ और स्त्री घायल हो कर गिर गईं और सड़क पर पड़ी रहीं.....

विषाक्त वातावरण, द्वेष और घृणा की चाबुक से तड़फड़ाते हुए हिंसा के घोड़े, विष फैलाने को सम्प्रदायों के अपने संगठन और उसे भड़काने को पुलिस और नौकरशाही देविन्दरलाल को अचानक लगता कि वह और रफीकुद्दीन ही गलत हैं जो कि बैठे हुए हैं, जब कि सब कुछ भड़क रहा है। उफन रहा है, झुलस और जल रहा है..... और वह लक्ष्य करता कि स्पष्ट स्वर जो वह रफीकुद्दीन की बातों में पाता था, धीरे–धीरे कुछ स्पष्ट होता जाता है– एक लज्जित सी रूखाई का स्वर.....

हिन्दुस्तान–पाकिस्तान की अनुमानित सीमा के पास एक गाँव में कई सौ मुसलमानों ने सिखों के गाँव में शरण पाई। अन्त में जब आस–पास में कई गाँव के और अमृतसर के लोगों के दबाव ने उस गाँव में उनके लिए फिर आसन्न संकट की स्थिति पैदा कर दी, तब गाँव के लोगों ने अपने मेहमानों को अमृतसर स्टेशन पहुँचाने का निश्चय किया जहाँ से वे सुरक्षित मुसलमान इलाके में जा सकें, और दो–ढाई सौ आदमी किरपानें निकालकर उन्हें घेरे में लेकर स्टेशन पहुँचा आए–किसी को क्षति नहीं पहुँची.....

घटना सुनकर रफीकुद्दीन ने कहा, ''आखिर तो लाचारी होती है, अकेले इन्सान को झुकना ही पड़ता है। यहाँ तो पूरा गाँव था फिर भी उन्हें हारना पड़ा। लेकिन आखिर तक उन्होंने निबाहा, इसकी

दाद देनी चाहिए। उन्हें पहुँचा आए–''

देविन्दरलाल ने हामी भरी। लेकिन सहसा पहला वाक्य उनके स्मृति पटल पर उभर आया–''आखिर तो लाचारी होती है–अकेले इन्सान को झुकना ही पड़ता है।'' उन्होंने एक तीखी नजर रफीकुद्दीन की ओर देखा, पर वे कुछ बोले नहीं।

अपराह्न में छः सात आदमी रफीकुद्दीन से मिलने आये। रफीकुद्दीन ने उन्हें अपनी बैठक में ले जाकर दरवाजे बन्द कर लिए। डेढ़–दो घंटे तक बातें हुई। सारी बात प्रायः धीरे–धीरे हुई, बीच–बीच में कोई स्वर ऊंचा उठ जाता, और एक–आध शब्द देविन्दरलाल के कान में पड़ जाता–'बेवकूफी', 'गद्दारी', 'इस्लाम'.... वाक्यों को पूरा करने की कोशिश उन्होंने आयासपूर्वक नहीं की। दो घंटे बाद जब उनको विदा करके रफीकुद्दीन बैठक से निकलकर आए, तब भी उनसे लपककर पूछने की स्वाभाविक प्रेरणा को उन्होंने दबाया। पर जब रफीकुद्दीन बिना एक शब्द कहे भीतर जाने लगे तब उनसे न रहा गया और उन्होंने आग्रह के स्वर में पूछा–''क्या बात है रफीक साहब, खैर तो है?''

रफीकुद्दीन ने मुँह उठाकर एक बार उनकी ओर देखा, बोले नहीं। फिर आँखें झुका लीं।

अब देविन्दरलाल ने कहा, ''मैं समझता हूँ, मेरी वजह से आपको जलील होना पड़ रहा है और खतरा उठाना पड़ रहा है सो अलग? लेकिन आप मुझे जाने दीजिए। मेरे लिए आप जोखिम में न पड़ें। आपने जो कुछ किया है उसके लिए मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ आपका एहसान....''

रफीकुद्दीन ने दोनों हाथ देविन्दरलाल के कन्धों पर रख दिये। कहा, ''देविन्दरलाल जी।'' उनकी साँस तेज चलने लगी। फिर वह सहसा भीतर चले गए।

लेकिन खाने के वक्त देविन्दरलाल ने फिर सवाल उठाया। बोले, ''आप खुशी से न जाने देंगे तो मैं चुपचाप खिसक जाऊँगा। आप सच–सच बताइए, आपसे उन्होंने कहा क्या?''

''धमकियाँ देते रहे और क्या?''

''फिर भी क्या धमकी आखिर....''

''धमकी की भी 'क्या' होती है क्या? उन्हें शिकार चाहिए–हल्ला करके न मिलेगा तो आग लगाकर लेंगे।''

''ऐसा! तभी तो मैं कहता हूँ मैं चला। मैं इस वक्त अकेला आदमी हूँ, कहीं निकल ही जाऊँगा। आप घरबार वाले आदमी–ये लोग तो सब तबाह कर डालने पर तुले हैं।''

''गुण्डे बिलकुल!''

''आज ही चला जाऊँगा।''

''यह कैसे हो सकता है? आखिर आपको चले जाने से हमीं ने रोका था, हमारी भी तो कुछ जिम्मेदारी है–''

''आपने भला चाहकर ही रोका था–उससे आगे कोई जिम्मेदारी नहीं है–''

''आप जाएँगे कहाँ–''

''देखा जाएगा–''

''नहीं, यह नामुमकिन बात है।''

किन्तु बहस के बाद तय हुआ यही कि देविन्दरलाल वहाँ से टल जाएँगे। रफीकुद्दीन और कहीं पड़ोस में उनके एक मुसलमान दोस्त के यहाँ छिपकर रहने का प्रबन्ध कर देंगे–वहाँ तकलीफ तो होगी, पर खतरा नहीं होगा, क्योंकि देविन्दरलाल घर में नहीं रहेंगे। वहाँ पर रहकर जान की हिफाजत तो होगी, तब तक कुछ और उपाय सोचा जाएगा निकलने का.....

देविन्दरलाल शेख अताउल्लाह के अहाते के अन्दर पिछली तरफ पेड़ों के झुरमुट की आड़ में बनी हुई एक गैराज में पहुँच गए। ठीक गैराज में तो नहीं, गैराज की बगल में एक कोठरी थी, जिसके सामने दीवारों में घिरा हुआ एक छोटा सा आँगन था। पहले शायद यह ड्राइवर के रहने के काम आती हो। कोठरी में सामने और गैराज की तरफ के किवाड़ों को छोड़कर खिड़की वगैरह नहीं थी। एक तरफ एक खाट थी, आले में एक लोटा। फर्श कच्चा, मगर लीपा हुआ। गैराज के बाहर लोहे की चादर का मजबूत फाटक था, जिसमें ताला पड़ा था। फाटक के अन्दर ही कच्चे फर्श में एक गढ़ा सा खुदा हुआ था। जिसके एक ओर चूना मिली मिट्टी का ढेर और मिट्टी का लोटा देखकर गढ़े का उपयोग समझते देर न लगी।

देविन्दरलाल का ट्रंक और बिस्तर जब कोठरी के कोने में रख दिया गया और बाहर आँगन का फाटक बन्द करके उसमें भी ताला लगा दिया गया तब थोड़ी देर वे हतबुद्धि खड़े रहे। यह है आजादी! पहले विदेशी सरकार लोगों को कैद करती थी कि वे आजादी के लिए लड़ना चाहते थे, अब अपने ही भाई अपनों को तनहाई कैद दे रहे हैं। क्योंकि वे आजादी के लिए ही लड़ाई रोकना चाहते हैं। फिर मानव प्राणी का स्वाभाविक वास्तुवाद जागा, और उन्होंने गैराज, कोठरी, आँगन का निरीक्षण इस दृष्टि से आरम्भ किया कि क्या–क्या सुविधाएँ वह अपने लिए कर सकते हैं।

गैराज ठीक है, थोड़ी दुर्गन्ध होगी, ज्यादा नहीं, बीच का किवाड़ बन्द रखने से कोठरी में नहीं आएगी। नहाने का कोई सवाल ही नहीं,–पानी शायद मुँह–हाथ धोने को काफी हो जाया करेगा.....

कोठरी–ठीक है। रोशनी नहीं है, पढ़ने–लिखने का सवाल नहीं उठता। पर काम चलाऊ रोशनी प्रतिबिम्बित होकर आ जाती है। क्योंकि आँगन की एक ओर सामने के मकान की कोने वाली बत्ती से रोशनी पड़ती है। बल्कि आँगन में इस जगह खड़े होकर शायद कुछ पढ़ा भी जा सके। लेकिन पढ़ने को है ही नहीं, यह तो ध्यान ही न रहा था।

देविन्दरलाल फिर ठिठक गए। सरकारी कैद में तो गा–चिल्ला भी सकते हैं, यहाँ तो चुप रहना होगा।

उन्हें याद आया, उन्होंने पढ़ा है, जेल में लोग चिड़िया, कबूतर, गिलहरी, बिल्ली आदि से दोस्ती करके अकेलापन दूर करते हैं..... वह भी न हो तो कोठरी में मकड़ी चींटी आदि का अध्ययन करके.....उन्होंने एक बार चारों ओर नजर दौड़ाई। मच्छरों से भी बन्धु भाव हो सकता है, वह उनका मन किसी तरह नहीं स्वीकार कर पाया।

वे आँगन में खड़े होकर आकाश देखने लगे। आजाद देश का आकाश और नीचे से अभ्यर्थना में–जलते हुए घरों का धुआँ! धूपेन घापयामः। लाल चन्दन–रक्त चन्दन....

अचानक उन्होंने आँगन की दीवार पर एक छाया देखी–एक बिलार। उन्होंने बुलाया ''आओ, आओ' पर वह वहीं बैठा स्थिर दृष्टि से ताकता रहा।

जहाँ बिलार आता है, वहाँ अकेलापन नहीं है। देविन्दरलाल ने कोठरी में जाकर बिस्तर बिछाया और थोड़ी देर में निर्द्वन्द्व भाव से सो गए।

दिन छिपे के वक्त केवल एक बार खाना आता था। यों वह दो वक्त के लिए काफी होता था। उसी समय कोठरी और गैराज के लोटे भर दिए जाते थे। लाता था एक जवान लड़का, जो स्पष्ट ही नौकर नहीं था, देविन्दरलाल ने अनुभव किया कि शेख साहब का लड़का होगा। वह बोलता बिलकुल नहीं था। देविन्दरलाल ने पहले दिन पूछा था कि शहर का क्या हाल है? तो उसने एक अजनबी दृष्टि से उन्हें देख लिया था। फिर पूछा कि अभी अमन हुआ या नहीं? तो उसने नकारात्मक सिर हिला दिया था और सब खैरियत ? तो फिर सिर हिलाया था–हाँ।

देविन्दरलाल चाहते तो खाना दूसरे वक्त के लिए रख सकते थे, पर एक बार आता है तो वह एक बार ही खा लेना चाहिए यह सोचकर वे डटकर खा लेते थे और बाकी बिलार को दे देते थे। बिलार खूब हिल गया था, आकर गोद में बैठ जाता और खाता रहता, फिर हड्डी–वड्डी लेकर आँगन के कोने में बैठकर चबाता रहता या ऊब जाता तो देविन्दरलाल के पास घुरघुराने लगता।

इस तरह शाम कट जाती थी। रात घनी हो आती थी, तब वे सो जाते थे। सुबह उठकर आँगन में कुछ वरजिश कर लेते थे कि शरीर ठीक रहे, बाकी दिन कोठरी में बैठे कभी कंकड़ों से खेलते, कभी आँगन की दीवार पर बैठने वाली गौरेया देखते, कभी दूर से कबूतर का गुटरगूँ सुनते–कभी सामने के कोने से शेखजी के घर के लोगों की बातचीत भी सुन पड़ती। अलग–अलग आवाजें वे पहचानने लगे थे, और तीन–चार दिन में ही वे घर के भीतर के जीवन और व्यक्तियों से परिचित हो गए थे। एक भारी सी जनानी आवाज थी–शेख साहब की बीबी की, एक और तीखी जनानी आवाज थी जिसके स्वर में वय का खुरदरापन था–घर की कोई और बुजुर्ग स्त्री, एक विनीत युवा स्वर था जो प्रायः पहली आवाज की जैबू! नी जैबू! पुकार के उत्तर में बोलता था और इसलिए शेख साहब की लड़की जेबुन्निसा का स्वर था। दो मर्दानी आवाजें भी सुन पड़ती थीं–एक तो आबिद मियाँ की, जो शेख साहब का लड़का हुआ और जो खाना लेकर आता है। और एक बड़ी भारी और चरबी से चिकनी आवाज जो शेख साहब की आवाज है। इस आवाज को देविन्दरलाल सुन तो सकते, लेकिन इसकी बात के शब्दाकार कभी पहचान में न आते–दूर से तीखी आवाजों के बोल ही स्पष्ट समझ आते हैं।

जैबू की आवाज से देविन्दरलाल का लगाव था। घर की युवती लड़की की आवाज थी, इस स्वाभाविक आकर्षण से नहीं, वह विनीत थी, इसलिए मन–ही–मन वे जैबुन्निसा के बारे में अपने ऊहापोह की रोमानी खिलवाड़ कहकर अपने को थोड़ा झिड़क भी लेते थे; पर अक्सर वे यह भी सोचते थे कि क्या यह आवाज भी लोगों में फिरकापरस्ती का जहर भरती होगी ? सकती होगी ? शेख साहब पुलिस के किसी दफ्तर में शायद हैडक्लर्क हैं। देविन्दरलाल को यहाँ लाते समय रफीकुद्दीन ने यही कहा था कि पुलिसियों का घर तो सुरक्षित होता है, यह बात ठीक है लेकिन सुरक्षित होता है इसलिए शायद बहुत से उपद्रव की जड़ भी होता है। ऐसे घर में भी सभी लोग जहर फैलाने वाले हों तो अचम्भा क्या....

लेकिन खाते वक्त भी वह सोचते, खाने में कौनसी चीज किस हाथ की बनी होगी....परोसा किसने होगा। सुनी बातों से वह जानते थे कि पकाने में बड़ा हिस्सा तो उस तीखी खुरदरी आवाज वाली स्त्री का रहता था, पर परोसना शायद जैबुन्निसा के जिम्मे ही था और यही सब सोचते–सोचते देविन्दरलाल खाना खाते और कुछ ज्यादा ही खा लेते। खाने में बड़ी–बड़ी मुसलमानी रोटी के बजाय छोटे–छोटे हिन्दू फुलके देखकर देविन्दरलाल के जीवन की एकरसता में थोड़ा सा परिवर्तन आया। माँस तो था लेकिन आज रबड़ी भी थी जबकि पीछे मीठे के नाम पर एक आध बार शाह टुकड़ा और एक बार फिरनी आई थी। आबिद जब खाना रखकर चला गया तब देविन्दरलाल क्षणभर उसे देखते रहे। उनकी उँगलियां फुलकों से खेलने लगीं– उन्होनें एकाध को उठाकर फिर रख दिया; पल भर के लिए अपने घर का दृश्य उनकी आँखों के आगे दौड़ गया। उन्होंने फिर दो–एक फुलके उठाए और फिर रख दिये।

हठात वे चौंके।

तीन–एक फुलकों की तह के बीच में कागज की एक पुड़िया सी पड़ी थी।

देविन्दरलाल ने पुड़िया खोली।

पुड़िया में कुछ नहीं था।

देविन्दरलाल उसे फिर गोल करके फेंक देने वाले थे कि हाथ ठिठक गया। उन्होंने कोठरी से

आँगन में जाकर कोने में पंजों पर खड़े होकर बाहर की रोशनी में पुर्जा देखा, उस पर कुछ लिखा था। केवल एक सतर।

''खाना कुत्ते को खिलाकर खाइएगा।''

देविन्दरलाल ने कागज की चिन्दियाँ की। चिन्दियों को मसला कोठरी से गैराज में जाकर गड्ढे में डाल दिया और आँगन में लौट आए और टहलने लगे। मस्तिष्क ने कुछ नहीं कहा। सन्न रहा। केवल एक नाम उसके भीतर खोया सा चक्कर काटता रहा, जैबू...जैबू...जैबू...

थोड़ी देर बाद वह फिर खाने के पास जाकर खड़े हो गए।

यह उनका खाना है–देविन्दरलाल का। मित्र के नहीं, तो मित्र के मित्र के यहाँ से आया– और उनके मेजबान के, उनके आश्रयदाता के।

जैबू के।

जैबू के पिता के।

कुत्ता यहाँ कहाँ है?

देविन्दरलाल फिर टहलने लगे।

आँगन की दीवार पर छाया सरकी। बिलार बैठा था।

देविन्दरलाल ने बुलाया। लपककर कन्धे पर आ गया। देविन्दरलाल ने उसे गोद में लिया और पीठ सहलाने लगे। वह घुरघुराने लगा। देविन्दरलाल कोठरी में गए। थोड़ी देर बिलार को पुचकारते रहे, फिर धीरे–धीरे बोले, ''देखो बेटा, तुम मेरे मेहमान, मैं शेख साहब का, है न? वह मेरे साथ जो करना चाहते हैं, वही मैं तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ। चाहता नहीं हूँ, पर करने जा रहा हूँ। वह भी चाहते हैं कि नहीं, पता नहीं, यह तो जानना है। इसलिए तो मैं तुम्हारे साथ वह करना चाहता हूँ जो मेरे साथ वह पता नहीं चाहते हैं कि नहीं ..... नहीं सब बात गड़बड हो गई। अच्छा रोज मेरी जूठन तुम खाते हो, आज तुम्हारी मैं खाऊँगा। हाँ, यही ठीक है। लो खाओ–''

बिलार ने मांस खाया। हड्डी झपटना चाहता था, पर देविन्दरलाल ने उसे गोद में लिये ही रबड़ी खिलाई–वह सब चाट गया। देविन्दरलाल उसे गोद में लिए सहलाते रहे।

जानवरों में तो सहज ज्ञान होता है। खाद्य–अखाद्य का, नहीं तो वे बचते कैसे? सब जानवरों में होता है, और बिल्ली तो जानवरों में शायद सबसे सहज ज्ञान के सहारे जीने वाली है, तभी तो कुत्ते की तरह पलती नहीं, बिल्ली जो खा ले वह सर्वथा खाद्य है– जो बिल्ली सड़ी मछली खा ले जिसे इन्सान न खाए वह और बात है....

सहसा बिलार जोर से गुस्से से चीखा और उछलकर गोद से बाहर जा कूदा, चीखता–गुर्राता सा कूदकर दीवार पर चढ़ा और गैराज की छत पर जा पहुँचा। वहाँ से थोड़ी देर तक उनके कानों में अपने–आपसे ही लड़ने की आवाज आती रही। फिर धीरे–धीरे गुस्से का स्वर दर्द के स्वर में परिणत हुआ, फिर एक करुण रिरियाहट में, एक दुर्बल चीख में, एक बुझती हुई सी कराह में, फिर सहसा चुप हो जाने वाली लम्बी सांस में–

देविन्दरलाल फिर खाने को देखने लगे। वह कुछ साफ–साफ दीखता हो सो नहीं; पर देविन्दरलाल जी की आँखें निस्पन्द उसे देखती रहीं।

आजादी! भाईचारा! देश राष्ट्र....!

एक ने कहा कि हम जोर करके रखेंगे और रक्षा करेंगे, पर घर से निकाल दिया दूसरे ने आश्रय दिया और विष दिया।

और साथ में चेतावनी कि विष दिया जा रहा है।

देविन्दरलाल का मन ग्लानि से उमड़ गया। इस धक्के को राजनीति की भुरभुरी रेत की दीवार के सहारे नहीं, दर्शन के सहारे ही झेला जा सकता था।

देविन्दरलाल ने जाना कि दुनिया में खतरा बुरे की ताकत के कारण नहीं, अच्छे की दुर्बलता के कारण है। भलाई की साहसहीनता ही बड़ी बुराई है। घने बादल से रात नहीं होती, सूरज के निस्तेज हो जाने से होती है।

उन्होंने खाना उठाकर बाहर आँगन में रख दिया। दो घूंट पानी पिया, फिर टहलने लगे।

तनिक देर बाद उन्होंने आकर ट्रंक खोला। एक बार सरसरी दृष्टि से सब चीजों को देखा, फिर ऊपर के खाने में से दो–एक कागज, दो–एक फोटो, एक सेविंग बैंक की पासबुक और एक बड़ा सा लिफाफा निकाल कर एक काले शेरवानीनुमा कोट की जेब में रखकर कोट पहन लिया। आँगन में आकर एक क्षण भर कान लगाकर सुना।

फिर वे आँगन की दीवार फांद गए और बाहर सड़क पर निकल गए। वे स्वयं न जान सके कि कैसे।

इसके बाद की घटना, घटना नहीं है, घटनाएँ सब अधूरी होती हैं, पूरी तो कहानी होती है। कहानी की संगति मानवीय तर्क या विवेक या कला या सौन्दर्य बोध की बनी हुई संगति है इसलिए मानव को दीख जाती है और वह पूर्णता का आनन्द पा लेता है। घटना की संगति मानव पर किसी शक्ति की–कह लीजिए काल या प्रकृति या संयोग या दैव या भगवान की–बनाई हुई संगति है। इसलिए मानव को सहसा नहीं भी दीखती इसलिए इसके बाद जो कुछ हुआ और जैसे हुआ वह बताना जरूरी नहीं। इतना बताने से काम चल जायेगा कि डेढ़ महीने बाद अपने घर का पता लेने के लिए देविन्दरलाल अपना पता देकर दिल्ली रेडियो से अपील करवा रहे थे, तब एक दिन उन्हें लाहौर की मुहरवाली एक छोटी सी चिट्ठी मिली थी।

''आप बचकर चले गए, इसके लिए खुदा का लाख–लाख शुक्र है। मैं मानती हूँ कि रेडियो पर जिनके नाम अपील की है, वे सब सलामती से आपके पास पहुँच जाएँ। अब्बा ने जो किया या करना चाहा उसके लिए मैं माफी माँगती हूँ और यह भी याद दिलाती हूँ कि उसकी काट मैंने ही कर दी थी। अहसान नहीं जताती–मेरा कोई अहसान आप पर नहीं है–सिर्फ यह इल्तजा करती हूँ कि आपके मुल्क में कोई अल्पसंख्यक मज़लूम हो तो याद कर लीजियेगा। इसलिए नहीं वह मुसलमान है, इसलिए कि आप इन्सान हैं, खुदा हाफिज!''

देविन्दरलाल की स्मृति में शेख अताउल्ला की चरबी से चिकनी भारी आवाज गूँज गई, 'जैब! जैब!' और फिर गैराज की छत पर छटपटाकर धीरे–धीरे शांत होने वाले बिलार की वह दर्द भरी कराह, जो केवल एक लम्बी साँस बनकर चुप हो गई थी।

उन्होंने चिट्ठी की छोटी सी गोली बनाकर चुटकी से उड़ा दी।

शब्दार्थ–

शरणदाता– शरण देने वाला,	आग्रह– निवेदन,	व्यथा –पीड़ा,
फिज़ा – वातावरण,	फर्ज़ – कर्त्तव्य,	पनाह – शरण,
हिफाज़त – सुरक्षा,	मेजारिटी – बहुसंख्यक,	मुल्क – देश,

माइनोरिटी–अल्पसंख्यक, अहाता–बाड़ा, घिरी हुई भूमि, हुल्लड़–शोरगुल, हल्ला
बला–आपदा, वीरान–सुनसान, विषाक्त–जहर युक्त, जहरीला
रूखाई–रूखापन, कृपाण–तलवार, दाद देना–प्रशंसा करना,
स्मृति–याद, जलील–दुःखी, अपमानित नामुमकिन–असंभव,
निर्द्वन्द्व भाव–निश्चिन्तता, वय का–उम्र का, टहलना–घूमना,
परिणत–बदला हुआ, दुर्बल–कमजोर, निस्तेज–तेज रहित,
तर्क–तथ्य, सलामत–सुरक्षित, इल्तिज़ा–निवेदन (आग्रह),
मज़लूम–पीड़ित, आसन्न–जो निकट हो, निर्निमेष–अलपक।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. देविन्दरलाल और रफीकुद्दीन घर में बैठकर किसकी आलोचना किया करते थे–
   (क) मुसलमानों की (ख) हिन्दुओं की
   (ग) देश के भविष्य की (घ) देश के वर्तमान की
2. मरीज को देखते समय डॉक्टर की पीठ में छुरा भौंक दिया था–
   (क) दंगाइयों ने (ख) मोहल्ले के आदमी ने
   (ग) मरीज के भाई ने (घ) मरीज के रिश्तेदार ने
3. गैराज में रहने के दौरान देविन्दरलाल बाकी बचा खाना देते थे–
   (क) कुत्ते को (ख) बिलार को
   (ग) गाय को (घ) किसी को नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. ''नहीं साहब, हमारी नाक कट जायेगी।'' ये शब्द किससे, किसने और कब कहे थे ?
2. ''उन्हें शिकार चाहिए–हल्ला करके न मिलेगा तो आग लगाकर लेंगे।'' यहाँ शिकार कौन है और शिकारी कौन ?
3. देविन्दर लाल को मिली हुई लाहौर की मुहर वाली चिट्ठी किसकी थी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. रोटियों के बीच रखे कागज के पुर्जे पर क्या लिखा था? वह किसने लिखा और क्यों ?
2. रफीकुद्दीन अपनी आँखों में पराजय लिये चुपचाप क्या देखते रहे थे ?
3. ''..... धीरे–धीरे गुस्से का स्वर दर्द के स्वर में परिणत हुआ, फिर एक करुण रिरियाहट में, एक दुर्बल चीख में , एक बुझती हुई सी कराह.....'' यह बुझती कराह किसकी थी ? यह किस समय का वर्णन है ?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. 'शरणदाता' कहानी की मूल संवेदना और उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
2. ''देश के बँटवारे के समय लाहौर में हैवानियत और इंसानियत दोनों के दृश्य एक ही छत के नीचे दृष्टिगत होते है।'' इस कथन के संबंध में अपने विचार लिखिए।
3. यदि आप शेख अताउल्लाह के स्थान पर होते तो देविन्दरलाल के साथ कैसा व्यवहार करते ? अपनी कल्पना के आधार पर बताइये।

*****